|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

6/6 (श्लोक 51-78), शनिवार, 29 नवंबर 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/Coo8pwbH2AU

भगवत् प्राप्ति के साधन

गीता परिवार के मधुर गीत, हनुमान चालीसा पाठ, श्रीकृष्ण आराधना एवं दीप प्रज्वलन के पश्चात इस सत्र का प्रारम्भ हुआ।

श्रीभगवान् की अतिशय मङ्गलमय कृपा से हम सब लोगों का ऐसा सद्भाग्य जाग्रत हुआ है जो हम लोग अपने जीवन को सफल, सार्थक करने के लिए, अपने प्रमुच्य लक्ष्य को पाने के लिए, अपने इहलौकिक और पारलौकिक जीवन में अपनी उन्नति करने के लिए, मानव जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, पठन-पाठन तथा अध्ययन में, गीता जी के विवेचन को सुनने में और कण्ठस्थ करने में, उसके सूत्रों को समझकर जीवन में लाने के लिए, प्रवृत्त हो रहे हैं।

पता नहीं हमारे इस जन्म के कोई पुण्य कर्म हैं, हमारे पूर्व जन्म के सुकृत हैं, हमारे पूर्वजों के सुकृत हैं या फिर किसी जन्म में किसी महापुरुष की कृपा दृष्टि हम पर पड़ गयी जिस कारण हमारा ऐसा भाग्योदय हो गया जो हम श्रीमद्भगवद्गीता जी के लिए चुन लिए गए। यह साधारण बात नहीं है कि हम श्रीमद्भगवद्गीता जी के लिए चुने गए हैं। अतः बारम्बार अपने भाग्य की सराहना कर यह विचार करते रहना चाहिए कि हमने गीता जी को नहीं चुना है, वरन् हम उनके द्वारा चुने गए हैं। अब यह छूटनी नहीं चाहिए।

अट्ठारहवां अध्याय सारभूत अध्याय कहा जाता है। जैसे हमें ट्रेन पकड़नी हो और देर हो गयी हो तो यदि उसका अन्तिम डब्बा भी पकड़ में आ जाए तो पूरी ट्रेन पकड़ में आ जाती है। वैसे ही यदि पूरी गीता जी में कुछ बातें रह भी गयी होंगी तो अट्ठारहवें अध्याय से पूरी श्रीमद्भगवद्गीता जी समझ में आ जायेंगी।

18.51

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो, धृत्यात्मानं(न्) नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा, रागद्वेषौ व्युदस्य च॥18.51॥

(जो) विशुद्ध (सात्त्विकी) बुद्धि से युक्त, वैराग्य के आश्रित, एकान्त का सेवन करने वाला (और) नियमित भोजन करने वाला (साधक) धैर्यपूर्वक इन्द्रियों का नियमन करके, शरीर, वाणी, मन को वश में करके, शब्दादि विषयों का त्याग करके और राग-द्वेष को छोड़कर निरन्तर ध्यानयोग के परायण हो जाता है, (वह) अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह से रहित होकर

(एवं) ममता रहित तथा शान्त होकर ब्रह्मप्राप्ति का पात्र हो जाता है। (18.51-18.53)

18.52

विविक्तसेवी लघ्वाशी, यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं(म्), वैराग्यं(म्) समुपाश्रितः॥18.52॥

18.53

अहङ्कारं(म्) बलं(न्) दर्पं(ङ्), कामं(ङ्) क्रोधं(म्) परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः(श्) शान्तो, ब्रह्मभूयाय कल्पते॥18.53॥

विवेचन- श्रीभगवान् ने कहा कि भगवत् प्राप्ति के लिए कुछ योग्यताओं का होना आवश्यक है।

- **पहली- विशुद्ध बुद्धि धर्मयुक्त हो।**

धर्म-अधर्म के विषय में उसे कभी शङ्का न हो। मेरे लिए धर्म की कौन सी बात प्रधान्य है, यह जानकर उसकी प्रधानता में वही बात रहती है। वह अपने पत्नीधर्म, पुत्रधर्म, मित्रधर्म, सेवकधर्म आदि सभी धर्मों को उचित प्रकार से पूर्ण करता है। माँ, पुत्री, पड़ोसी, नौकरी आदि के प्रति अपने कर्तव्य को विशुद्धता से निभाना ही पहला धर्म है।

- **दूसरी- शास्त्र युक्त होना।**

धर्मयुक्तता का स्रोत शास्त्रयुक्त होना चाहिए। मनमाना आचरण न हो।

सोलहवें अध्याय में श्रीभगवान् ने स्पष्ट कहा है-

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिम् अवाप्नोति न सुखं न च परां गतिम्॥

जो शास्त्र विधि को छोड़कर मनमाना आचरण करते हैं, उन्हें सिद्धि नहीं मिलती।

ऐसा शास्त्रों में लिखा है, परन्तु मुझे तो ऐसा ठीक लगता है, ऐसा कहने वाले बहुत हैं। मैंने कहीं पढ़ा अथवा सुना नहीं है, परन्तु मेरी बुद्धि में ये बात आ गयी है, मुझे ऐसा उचित लगता है। ऐसा कहकर अपने को बुद्धिमान मानने वाले लोग अपना ही नाश करते हैं। ऐसे लोगों को न सिद्धि मिलती है, न सुख मिलता है और न ही परम गति मिलती है।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ |
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ||

क्या करना है और क्या नहीं करना है, इसके लिए शास्त्रों को ही प्रमाण मानो।

- **तीसरी- श्रेयस**

श्रेयस और प्रेयस दो बातें हैं। प्रेयस अर्थात् जो मन को प्रिय हो। जैसे जागने का समय है, परन्तु सोते रहें। पढ़ाई का समय है, पर खेलते रहें। गीता जी सुनने का समय है, पर रील देख रहे हैं। जबकि **श्रेयस अर्थात् जो मेरे उत्थान के लिए है।**

कई बार प्रेयस और श्रेयस एक साथ भी होता है, जैसे मुझे गीता जी पढ़ना अच्छा लगता है, यह बात प्रेयस भी है और श्रेयस भी है। मुझे पूजा करना अच्छा लगता है, मुझे सबसे मीठी वाणी में बात करना अच्छा लगता है, मुझे किसी की सहायता करना अच्छा लगता है, ऐसी सब बातों में प्रेयस और श्रेयस दोनों हैं। ऐसे व्यक्ति के जीवन का उत्थान सर्वोत्तम होता है।

रजोगुणी और तमोगुणी व्यक्ति के जीवन में प्रेयस और श्रेयस में भिन्नता बढ़ती जाती है। सात्त्विक व्यक्ति के लिए प्रेयस और श्रेयस लगभग एक ही बात होती है।

श्रेयस में भी दो बातें हैं, स्वयं के लिए श्रेयस और दूसरों के लिए श्रेयस

पूज्य स्वामी जी जैसे महात्मा दूसरों के श्रेयस में अपने श्रेयस को भुला देते हैं। अयोध्या में राम मन्दिर के ध्वजारोहण में स्वामी जी ने हर बात में कहा कि आजकल मैं स्वयं से रुष्ट हूँ। मैं किसी को मना नहीं कर पाता हूँ और इस प्रकार मुझे अपने लिए समय ही नहीं मिलता है। मैं दिन-रात भागता ही रहता हूँ, अपनी पूजा करने, पढ़ने का समय भी कम पड़ता है।

पचहत्तर वर्ष की आयु में भी वे तीन सौ पैंसठ दिन में से तीन सौ दिन यात्रा में रहते हैं। एक-एक दिन में तीन शहर में जाकर कथा/कार्यक्रम करते हैं। यह सब वे अपनी लोकैषणा हेतु नहीं करते हैं। इसका तो वे कोई विचार ही नहीं करते हैं कि उनकी फोटो आएगी अथवा उनका नाम आएगा। जब कोई उनसे आग्रह करता है तो वे उनकी इच्छा को टालते नहीं हैं।

अच्छा कार्य जानकार वे सबके हित के लिए कार्य करते रहते हैं। दूसरों के श्रेयस में अपना श्रेयस ढूँढ लेना, यही तो सन्तों की महिमा है।

- **चौथी-धर्मयुक्त-** शास्त्रयुक्त बात है, पर क्या मुझे उसकी आवश्यकता है, यह भी देखना चाहिए।

अनेक समय रजोगुणी स्वभाव अनावश्यक बातों में फँसा देता है। अतः अनावश्यक बात से बचना चाहिए। पेट भरा होने पर श्रेयस अर्थात् धर्मयुक्त, शास्त्रयुक्त होते हुए भी दूध पीने की आवश्यकता नहीं होती।

- **पाँचवीं- कार्य करते हुए मूल लक्ष्य से न भटकें।**

कई लोगों का जीवन एक दिशा में नहीं चलता है। वे सभी अच्छे काम करना चाहते हैं। गीता जी भी पढ़नी है, रामायण भी पढ़नी है, सामाजिक कार्य भी करने हैं, कथा भी सुननी है, ऐसे लोगों से पूछो कि आप कहाँ हैं तो वो कहेंगे कि जहाँ चालीस वर्ष पहले थे, क्योंकि इन्होने एक दिशा में अपने जीवन को नहीं बढ़ाया था। अपना ध्येय निश्चित कर उस ओर बढ़ें।

इन पाँच बातों का ध्यान रखने से व्यक्ति की निर्णय लेने की समर्थता बढ़ जाती है।

- **लघ्वाशी- कम खाने वाला।**

नीति सूत्र में आया है कि जो दिन में एक ही बार मुँह झूठा करेगा, उसे नित्य एकादशी का फल मिलेगा। उत्तम साधक को अधिक बार मुँह झूठा नहीं करना चाहिए और एक बार में बहुत सारा भी नहीं खाना चाहिए।
लघ्वाशी का पूर्ण अर्थ अपनी आवश्यकताओं को कम करना है।

गीता प्रेस के संस्थापक सेठ श्री जयदयाल गोयन्दका जी अपने भोजन में मात्र तीन पदार्थ लेते थे और तीन ही वस्त्र पहनते थे। उनके सामने जितने भी पदार्थ रख दो, वे उसमें से तीन ही पदार्थ ग्रहण करते थे। वे अपनी इन्द्रियों को आहार नहीं देते थे। वे

अपनी दृष्टि को आहार न देने के लिए अपने पैर के अङ्गूठे को देखकर चलते थे। देखना, सुनना, बोलना, स्पर्श करना सभी में अपनी आवश्यकताओं को उन्होंने न्यून कर दिया था।

उन्नत जीवन के लिए अपनी इन्द्रियों के आहार को कम करना होगा। गाँधी जी अस्वाद का व्रत करते थे।

परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन स्वामी रामसुख जी महाराज सात घर से भिक्षा लेते थे। वे अपने हाथ में एक काष्ठ पात्र रखते थे और एक लकड़ी की ही चम्मच से उसमें अपना भोजन करते थे। उनके शिष्य उसमें ही सभी तरह के पदार्थ डाल देते थे। नमकीन, मीठा, कड़वा, खट्टा सभी एक साथ प्रसन्नता पूर्वक खाते थे। वे उसमें स्वाद नहीं देखते थे। किसी भोग में अटकते नहीं थे।

किसी भी प्रकार के भोग में आपत्ति नहीं है, परन्तु यदि मन उसमें अटकता है, तो उसमें आपत्ति है।

पूज्य स्वामी जी बड़ी कार में जाएँ, वायुयान से जाएँ अथवा पैदल चलें, उनकी प्रसन्नता में कोई अन्तर नहीं आता है। जब उनके रसोइये से पूछा गया कि स्वामी जी को भोजन में क्या अच्छा लगता है तो उसने बताया कि चालीस वर्षों से भोजन बना रहा हूँ परन्तु आज तक नहीं पता कि उन्हें क्या अच्छा लगता है।

पाँचों विषयों को भोग करने पर भी जो साधक विषयी नहीं है, वह लघ्वाशी है।

- **विविक्तसेवी- अर्थात् एकान्त में रहना।**

बिजली भी न हो, इण्टरनेट भी न हो, टीवी भी न चले और फ़ोन भी न चले तो भी प्रसन्न रहें कि आज मैं अपने साथ हूँ। तभी तो अपने भीतर झाङ्कर आत्म मन्थन करने का स्वभाव बनेगा।

अञ्जुमन में खिलवत, खिलवत में अञ्जुमन
जिसको एकान्त में रस आ गया उसको भीड़ अच्छी नहीं लगती।

- **धृत्या- सात्त्विक और दृढ धारणा**

जमी टळत जमात टळत मगर बंदा नहीं टळत
जिसकी सात्त्विकता एकदम दृढ है।

सप्तऋषि पार्वती जी को समझाने गए कि भोले बाबा का विचार छोड़ दें। समाधि में रहने वाले पति को पाकर वे क्या करेंगी। विवाह करना है तो विष्णु जी से करें। वे पार्वती जी की परीक्षा ले रहे थे, परन्तु पार्वती जी ने कहा कि

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥

मेरा तो करोड़ जन्मों तक यही हठ रहेगा कि या तो शिवजी को वरूँगी, नहीं तो कुमारी ही रहूँगी।

- **आत्मानम् नियम्य- स्वयं पर नियन्त्रण**
- **यतवाक्कायमानसः अर्थात् मनसा, वाचा, कर्मणा, अपने मन, वाणी और कर्मों पर नियन्त्रण**
- **रागद्वेषौ व्युदस्य च अर्थात् जिसको राग और द्वेष दोनों ही न हों, अर्थात् वैराग्यवान**

महावीर स्वामी जी जङ्गल में खड़े होकर तपस्या कर रहे थे। उनकी आँखें आधी खुली थीं, पर वे गहरी समाधि में थे। उधर से एक गड़रिया आया। उसने उन्हें खड़े हुए देखा। उसने उनसे कहा कि भैया जरा मेरी बकरियाँ देखना। मेरी एक भेड़ आगे चली गयी है। मैं उसे ढूँढ कर लाता हूँ।

गड़रिए को लगा कि उन्होंने सुन लिया परन्तु वे तो समाधि में थे। वह जब भेड़ को लेकर आया तो उसने देखा कि तीन बकरी गायब हैं। उसे अत्यन्त क्रोध आया और क्रोध वश वह उन्हें बुरा-भला कहने लगा, परन्तु महावीर जी तो समाधि में थे, उन्होंने तो न पहले कुछ सुना था और न अब कुछ सुन रहे थे। क्रोध में उसने एक लकड़ी महावीर जी के कान में डाल दी जिससे उनके कान से रक्त बहने लगा। उन पर ऐसा अत्याचार होते देख स्वयं इन्द्र देव वहाँ प्रकट हो गए और उसका हाथ पकड़ कर उसे रोका।

देवता को प्रकट होते देख गड़रिया काँपने लगा। इन्द्रदेव उस पर क्रोधित हुए कि एक संन्यासी की तपस्या में तुमने विघ्न डाला और कष्ट भी दिया। अब इसके लिए तुम्हें मृत्यु दण्ड मिलेगा। महावीर जी की समाधि खुल गयी।

इन्द्रदेव ने अपने देर से आने के लिए उनसे क्षमा याचना की। साधु-सन्यासी, तपस्वियों की रक्षा करना हमारा धर्म है, पर मैं यहाँ देर से आया। इस गड़रिये ने आपको बड़ा कष्ट दिया है, परन्तु आप चिन्ता न करें, मैं इसे कड़ा दण्ड दूँगा।

महावीर जी ने उस गड़रिये को जाने को कहा तो वह वहाँ से चला गया। इन्द्रदेव ने कहा आप तो बड़े दयालु हैं। उसने आपको कष्ट दिया और फिर भी आपने उसको क्षमा कर दिया। मैं आपकी सुरक्षा के लिए कुछ देवदूत नियुक्त कर देता हूँ जिससे कि आपको कोई कष्ट न होवे। महावीर जी ने उनकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया और दूसरी दिशा में चल दिए। इन्द्रदेव के पूछने पर उन्होंने उन्हें भी जाने को कह दिया।

कष्ट देने वाले गडरिये से उन्हें कोई द्वेष नहीं था और स्नेह रखने वाले इन्द्रदेव से कोई राग नहीं था।

अहङ्कार, बल, घमण्ड, काम और क्रोध का महान योगियों के जीवन में सर्वथा अभाव होता है और उनकी यह स्तिथि सदैव रहती है।

अपरिग्रहम- किसी भी वस्तु का सङ्ग्रह नहीं करना। एक ही व्यक्ति के पास दर्जनों घड़ियाँ, जूते, कपड़े होते हैं। इसी का त्याग करना है। आवश्यकता से अधिक वस्तु अपने पास नहीं रखना। कुछ नया लाना भी है तो पहले पुराना किसी को दे दें। निःशुल्क है, यह सोचकर वस्तुओं की अनावश्यक खरीदारी नहीं करना है।

18.54

ब्रह्मभूतः(फ्) प्रसन्नात्मा, न शोचति न काङ्क्षति।
समः(स्) सर्वेषु भूतेषु, मद्भक्तिं(म्) लभते पराम्॥18.54॥

(वह) ब्रह्मरूप बना हुआ प्रसन्न मन वाला साधक न तो (किसी के लिये) शोक करता है (और) न किसी की इच्छा करता है। (ऐसा) सम्पूर्ण प्राणियों में समभाव वाला साधक मेरी पराभक्ति को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- ब्रह्म में जिसका एक ही भाव है, ऐसे प्रसन्न चित्त वाला न किसी बात का शोक करता है, न किसी बात की आकांशा करता है।

सब प्राणियों, भूतों में समभाव रखता है, ऐसे व्यक्ति को मेरी प्राप्ति होती है। लोक की कोई आशा नहीं, क्षेम की कोई आशा नहीं। जहाँ अँधेरा नहीं, वहाँ प्रकाश स्वतः होता है। इसी प्रकार जहाँ शोक नहीं, वहाँ प्रसन्नता ही प्रसन्नता होती है। **उसकी प्रसन्नता किसी वस्तु पर आधारित नहीं है। इस प्रकार की भक्ति को परा भक्ति कहते हैं।**

18.55

भक्त्या मामभिजानाति, यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।

ततो मां (न्) तत्त्वतो ज्ञात्वा, विशते तदनन्तरम्॥18.55॥

(उस) पराभक्ति से मुझे, (मैं) जितना हूँ और जो हूँ (इसको) तत्त्व से जान लेता है फिर मुझे तत्त्व से जानकर तत्काल मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।

विवेचन- परा भक्ति से ज्ञान की प्राप्ति होती है। उस पराभक्ति से जो मुझे, मैं जितना हूँ और जो हूँ इसको तत्त्व से जान लेता है फिर मुझे तत्त्व से जानकर तत्काल मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहीं।
प्रेम गली अति सांकरी, जामें दो न समाहीं ॥

प्रेम गली में दो नहीं रह सकते।

जान तत्त्व तुम्हीं होइ जाई।।

साङ्ख्य योग में कर्मयोग और भक्तियोग प्रकट हो जायेगा। भक्ति योगियों में ज्ञान प्रकट हो जायेगा और योगियों में भक्तियोग प्रकट हो जायेगा।

मार्ग कौन सा है यह मुख्य नहीं है, वरन् किसको सिद्धि प्राप्त होती है, यह बात मुख्य है।

18.56

सर्वकर्माण्यपि सदा, कुर्वाणो मद् व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति, शाश्वतं (म्) पदमव्ययम्॥18.56॥

मेरा आश्रय लेने वाला भक्त सदा सब कर्म करता हुआ भी मेरी कृपा से शाश्वत अविनाशी पद को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- मेरे परायण हुआ कर्मयोगी सम्पूर्ण कर्मों को सदा करता हुआ भी अविनाशी परम तत्त्व को प्राप्त होता है। यह साधारण भक्ति से प्राप्त नहीं होगा।

यह फल साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई।।

साधना से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् जिसको जो चाहिए वो देते हैं। मुक्ति, भक्ति, विलय, धाम, निर्वाण, कैवल्य, आत्मसाक्षात्कार, जिसको जो चाहिए, वह देते हैं।

ये कर्म के फल से नहीं, कर्म फल के नष्ट होने से मिलता है। मन्दिर में दर्शन करना, भोग लगाना, जप करना, ये सब साधन हैं। जब हम मन्दिर से वापस आते हैं तो पण्डित जी प्रसाद देते हैं। प्रसाद में पेड़ा, हलवा या इलायचीदाना मिले, वो वस्तु प्रसाद नहीं है वरन् वस्तु के रूप में श्रीभगवान् की प्रसन्नता मिलती है। प्रसाद अर्थात् प्रसन्नता। श्रीभगवान् की प्रसन्नता को पण्डित जी प्रसाद के माध्यम से हम तक पहुँचाते हैं।

नष्टो मोहः(स्) स्मृतिर्लब्धा, त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।

सञ्जय कहते हैं-

व्यासप्रसादाच्छ्रुत-भगवान् व्यास के कृपा प्रसाद

किसी ने एक सन्त से पूछा कि श्रीभगवान् को पाने का सबसे अच्छा साधन क्या है? सन्त ने कहा कि जिस साधन से श्रीभगवान् प्रसन्न हो जाएँ, वही साधन अच्छा है।

हम जप,तप, पूजा, गीता पारायण जो भी करते हैं, श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए ही करते हैं।

18.57

चेतसा सर्वकर्माणि, मयि सन्न्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य, मच्चित्तः(स्) सततं(म्) भव॥18.57॥

चित्त से सम्पूर्ण कर्म मुझमें अर्पण करके, मेरे परायण होकर (तथा) समता का आश्रय लेकर निरन्तर मुझमें चित्त वाला हो जा।

विवेचन-श्रीभगवान् कहते हैं कि कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग तीनों को विलय कर दो।

- **सन्न्यस्य**-कर्म योग
- **उपाश्रित्य**-ज्ञान योग
- **मच्चित्तः**-भक्ति योग

तीनों का विलय कर दो, क्योंकि रास्ते भिन्न होने पर भी सभी का लक्ष्य एक ही है।

18.58

मच्चित्तः(स्) सर्वदुर्गाणि, मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्, न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥18.58॥

मुझमें चित्तवाला होकर (तू) मेरी कृपा से सम्पूर्ण विघ्नों को तर जायगा और यदि तू अहंकार के कारण (मेरी बात) नहीं सुनेगा (तो) तेरा पतन हो जायगा।

विवेचन- मेरी कृपा से सम्पूर्ण विघ्नों को तर जायेगा और अहङ्कार के कारण मेरे वचनों को नहीं सुनेगा तो तेरा नाश हो जायेगा ।

18.59

यदहङ्कारमाश्रित्य, न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते, प्रकृतिस्त्वां (न्) नियोक्ष्यति॥18.59॥

अहंकार का आश्रय लेकर (तू) जो ऐसा मान रहा (है) कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तेरा यह निश्चय मिथ्या (झूठा) है; (क्योंकि) (तेरी) क्षात्र-प्रकृति तुझे युद्ध में लगा देगी।

विवेचन- तुम ऐसा मान रहे हो कि तुम युद्ध नहीं करोगे, परन्तु तुम्हारा स्वभाव युद्ध करने वाला है ।

यदि तुम वन में जाकर दण्ड लेकर तपस्या करोगे और वहाँ देखोगे कि एक शेर किसी गाय का पीछा कर रहा है तो उसी दण्ड को लेकर उसका पीछा करोगे। तुम गाय की रक्षा करोगे। ऐसा तुम मोह के कारण नहीं, अपने स्वभाव के कारण करोगे।

18.60

स्वभावजेन कौन्तेय, निबद्धः(स्) स्वेन कर्मणा।
कर्तुं(न्) नेच्छसियन्मोहात्, करिष्यस्यवशोऽपि तत्॥18.60॥

हे कुन्तीनन्दन ! अपने स्वभाव-जन्य कर्म से बँधा हुआ (तू) मोह के कारण जिस युद्ध को नहीं करना चाहता, उसको (तू) (क्षात्र-प्रकृति के) परवश होकर करेगा।

विवेचन- हे कुन्तीपुत्र! जिस कार्य को तुम मोह के कारण करना नहीं चाहते हो, उसको भी तुम पूर्वकृत स्वभाव के कारण बँधे होकर विवश होकर करोगे ही, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अतः अपने कर्त्तव्यों से मत भागो।

18.61

ईश्वरः(स्) सर्वभूतानां(म्), हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि मायया॥18.61॥

हे अर्जुन ! ईश्वर सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में रहता है (और) अपनी माया से शरीररूपी यन्त्र पर आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को (उनके स्वभाव के अनुसार) भ्रमण कराता रहता है।

विवेचन- हे अर्जुन! ईश्वर अपनी माया से, शरीर रूपी यन्त्र पर आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को भ्रमण कराता हुआ सबके हृदय में स्थित है। यह शरीर यन्त्र के सामान है। जैसे कार उधर चलती है, जिधर उसको चलाने वाला चाहता है। उसी प्रकार माया सबको उनके कर्मों के अनुसार चलाती है। जैसे तुम्हारे पूर्व जन्मों के संस्कार हैं, वैसे ही माया तुम्हें घुमाती है।

उमा दारु जोषित की नाई। सबहि नचावत राम गोसाईं।

- **दारु**- लकड़ी
- **जोषित**- स्त्री

शिवजी कहते हैं कि उमा, ये सारे लोग लकड़ी की कठपुतली हैं, जिन्हें राम जी नचाते हैं। कर्म के अनुसार ही हमें योनि, स्थान, माता-पिता मिलते हैं।

कर्म के अनुसार ही हम नर, मादा, बलवान, बलहीन, मन्दबुद्धि बनते हैं।

उसमें जाति, उपजाति, भाई, मित्र, पड़ोसी ये सभी हमें पूर्वजन्मों में किये कर्मों के अनुसार ही मिलते हैं। हमारी बुद्धि, स्वभाव, रूप भी उन्हीं के अनुसार बनता है।

इनमें परिवर्तन करने के लिए अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता है, इसलिए एक ही डी.एन.ए. से पैदा हुए लोगों की वृत्तियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं।

18.62

तमेव शरणं(ङ्) गच्छ, सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां(म्) शान्तिं(म्), स्थानं(म्) प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥18.62॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन ! (तू) सर्वभाव से उस ईश्वर की ही शरण में चला जा। उसकी कृपा से (तू) परमशान्ति (संसार से सर्वथा उपरति) को और अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन- तुम सर्वभाव से उस ईश्वर की ही शरण में चले जाओ। **उसकी कृपा से ही परम शान्ति को और अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जाओगे।**

18.63

इति ते ज्ञानमाख्यातं(ङ्), गुह्याद्गुह्यतरं(म्) मया।
विमृश्यैतदशेषेण, यथेच्छसि तथा कुरु॥18.63॥

यह गुह्य से भी गुह्यतर (शरणागति रूप) ज्ञान मैंने तुझे कह दिया। (अब तू) इस पर अच्छी तरह से विचार करके जैसा चाहता है, वैसा कर।

विवेचन- हे अर्जुन! मैंने तुम्हें गुह्य से भी गुह्यतर ज्ञान दे दिया है। अब इस रहस्य युक्त ज्ञान को पूर्णतया जानकर अपनी बुद्धि से भली-भाँति विचार कर लो और तब जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो।

18.64

सर्वगुह्यतमं(म्) भूयः(श्), शृणु मे परमं(म्) वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति, ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥18.64॥

सबसे अत्यन्त गोपनीय सर्वोत्कृष्ट वचन (तू) फिर मुझसे सुन। तू मेरा अत्यन्त प्रिय है, इसलिये यह (विशेष) हित की बात (मैं) तुझे कहूँगा।

विवेचन- इतना कहने पर भी जब अर्जुन का कोई उत्तर नहीं मिला तो श्रीभगवान् ने कहा कि हे अर्जुन! मेरे परम रहस्यमयी गोपनीय वचन को तुम सुनो, क्योंकि तुम मुझे अतिशय प्रिय हो।

18.65

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां(न्) नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं(न्) ते, प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥18.65॥

(तू) मेरा भक्त हो जा, मुझमें मनवाला (हो जा), मेरा पूजन करने वाला (हो जा और) मुझे नमस्कार कर। (ऐसा करने से तू) मुझे ही प्राप्त हो जायगा - (यह मैं) तेरे सामने सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; (क्योंकि तू) मेरा अत्यन्त प्रिय है।

विवेचन- श्रीभगवान् के ऐसे वचन सुनकर अर्जुन के मुख पर उदासीनता छा गयी। ऐसा देखकर श्रीभगवान् को दया आ गयी और बोले कि अर्जुन तुम मेरे प्रिय सखा हो। अतः फिर से तुम्हारे हित की बात कहूँगा।

तुम मेरे में **मन लगाओ, मेरी भक्ति करो, मेरा ही भजन करो** और **मुझको ही प्रणाम करो**। ऐसा करने से **तुम मुझे ही प्राप्त होंगे**, **ऐसी मैं प्रतिज्ञा करता हूँ**।

18.66

सर्वधर्मान्परित्यज्य, मामेकं(म्) शरणं(म्) व्रज।
अहं(न्) त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥18.66॥

सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोड़कर (तू) केवल मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर।

विवेचन- इस श्लोक से थोड़ा भ्रम होता है कि श्रीभगवान् कौन से धर्म को छोड़ने की बात कर रहे हैं। दूसरे चरण को पहले पढ़ने से यह बात पूर्णतया समझ आ जाती है।

श्रीभगवान् कह रहे हैं कि तुम मेरी शरण में आ जाओ तो तुम्हें अपने किसी कर्त्तव्य कर्म की चिन्ता की आवश्यकता नहीं है और तुम्हें अपने पुराने पापों के फल की भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

तुम शोक मत करो, मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापों से मुक्त करूँगा। श्रीभगवान् अर्जुन पर कृपा करके ऐसा वचन देते हैं। श्रीभगवान् अर्जुन को आश्वासन ही नहीं वरन् प्रतिज्ञा करके कहते हैं।

18.67

इदं(न्) ते नातपस्काय, नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं(न्), न च मां(म्) योऽभ्यसूयति॥18.67॥

यह सर्वगुह्यतम वचन तुझे अतपस्वी को नहीं कहना चाहिए; अभक्त को कभी नहीं कहना चाहिए तथा जो सुनना नहीं चाहता (उसको) नहीं कहना चाहिए और जो मुझमें दोषदृष्टि करता है, उसको भी नहीं कहना चाहिए।

विवेचन- इस श्लोक में श्रीभगवान् ने गीता जी के माहात्म्य को बहुत बड़ा मानकर कहा कि जो भक्ति और तप रहित है, जो मुझमें दोष देखता है तथा जो सुनने की इच्छा न रखता हो, ऐसे मनुष्यों को नहीं कहना चाहिए।

इस वर्ष गीता जी की पाँच हज़ार तेरेसठवीं जयन्ती है। श्रीभगवान् ने कहा कि गीता जी सुनाने का कार्य मेरे भक्त स्वयं करेंगे। सन्तों ने कहा कि गीता जी सबको सुनानी चाहिए।

18.68

य इमं(म्) परमं(ङ्) गुह्यं(म्), मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं(म्) मयि परां(ङ्) कृत्वा, मामेवैष्यत्यसंशयः॥18.68॥

मुझमें पराभक्ति करके जो इस परम गोपनीय संवाद (गीताग्रन्थ) को मेरे भक्तों में कहेगा, (वह) मुझे ही प्राप्त होगा - इसमें कोई सन्देह नहीं है।

विवेचन- श्रीभगवान् ने कहा, जो गीता जी का प्रचार करेगा, जो लोगों को गीता जी से जोड़ेगा, जो गीता जी के माध्यम से मेरी भक्ति लोगों में पहुँचायेगा, उसको भगवत् प्राप्ति हो जाएगी। इसमें कोई संशय नहीं है।

18.69

न च तस्मान्मनुष्येषु, कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्माद्, अन्यः(फ्) प्रियतरो भुवि॥18.69॥

उसके समान मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई भी नहीं है और इस भूमण्डल पर उसके समान मेरा दूसरा कोई प्रियतर होगा भी नहीं।

विवेचन- जो गीता जी पढ़ेगा, उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करने वाला कोई दूसरा नहीं होगा। उसे मेरी प्राप्ति तो होगी ही, वह मेरा प्रिय भी होगा।

जो गीता जी का प्रचार करेगा; वह पूरी पृथ्वी पर ध्यानयोगी, कर्मयोगी, जपयोगी, किसी भी पन्थ के साधक, किसी भी विचारधारा के साधक से बढ़कर मेरा प्रिय हो जायेगा।

श्रीभगवान् ने गीता जी के प्रचार को अपनी प्राप्ति का सबसे बड़ा साधन बता दिया।

18.70

अध्येष्यते च य इमं (न्), धर्म्यं (म्) संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहम्, इष्टः (स्) स्यामिति मे मतिः॥18.70॥

जो मनुष्य हम दोनों के इस धर्ममय संवाद का अध्ययन करेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा - ऐसा मेरा मत है।

विवेचन- अर्जुन ने पूछा कि जो गीता जी का पाठ करेगा और प्रचार करेगा, उसकी कौन सी भक्ति मानी जायेगी?

श्रीभगवान् ने कहा कि सुनो अर्जुन! **जो पुरुष हम दोनों के इस धर्ममय संवाद का अध्ययन करेगा, उसके द्वारा मैं ज्ञान यज्ञ से पूजित होऊँगा।**

18.71

श्रद्धावाननसूयश्च, शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः(श्)शुभाँल्लोकान्, प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्॥18.71॥

श्रद्धावान् और दोषदृष्टि से रहित जो मनुष्य इस (गीता-ग्रन्थ) को सुन भी लेगा, वह भी शरीर छूटने पर पुण्यकारियों के शुभ लोकों को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन- जो मनुष्य श्रद्धा पूर्वक, दोषदृष्टि से रहित होकर गीता जी का श्रवण करेगा, वह भी पापों से मुक्त होकर उत्तम कर्म करने वाले इस श्रेष्ठ लोक को प्राप्त होगा।

इस प्रकार गीता जी श्रवण करने वाले भी ज्ञान यज्ञ से पूजित होंगे। इसके लिए दो बातें आवश्यक हैं-

1.श्रद्धा का होना,
2.दूसरों में दोष न निकालना।।

ऐसे व्यक्ति को स्वर्ग, मुक्ति, मेरा धाम, परम गति, जो चाहे वो मिलेगा।

18.72

कच्चिदेतच्छ्रुतं(म्) पार्थ, त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः(फ्), प्रनष्टस्ते धनञ्जय॥18.72॥

हे पृथानन्दन ! क्या तुमने एकाग्र-चित्त से इसको सुना? (और) हे धनञ्जय! क्या तुम्हारा अज्ञान से उत्पन्न मोह नष्ट हुआ ?

विवेचन- श्रीभगवान् अर्जुन से पूछते हैं कि हे पार्थ! क्या तुमने इस शास्त्र को एकाग्रचित्त होकर सुना? क्या तुम्हारा अज्ञान नष्ट हुआ?

18.73

अर्जुन उवाच
नष्टो मोहः(स्) स्मृतिर्लब्धा, त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः(ख्), करिष्ये वचनं(न्) तव॥18.73॥

अर्जुन बोले - हे अच्युत ! आपकी कृपा से (मेरा) मोह नष्ट हो गया है (और) मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। (मैं) सन्देह रहित होकर स्थित हूँ। (अब मैं) आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

विवेचन- हे अच्युत! आप ऐसा न सोचें। आप जहाँ लेकर आये हैं, मैं वहाँ पहुँच गया हूँ। **आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है**।

मेरी जो बुद्धि मोह में भटक गयी थी, वह वापस आ गयी है, उसमें प्रकाश वापस आ गया है। **अब मेरे सारे सन्देहों का नाश हो गया है**। संशय रहित होकर मैं आपकी आज्ञा पालन करने हेतु नियुक्त हो गया हूँ।

18.74

सञ्जय उवाच
इत्यहं(म्) वासुदेवस्य, पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषम्, अद्भुतं(म्) रोमहर्षणम्॥18.74॥

सञ्जय बोले - इस प्रकार मैंने भगवान् वासुदेव और महात्मा पृथानन्दन अर्जुन का यह रोमाञ्चित करने वाला अद्भुत संवाद सुना।

विवेचन- सञ्जय बोले, हे राजन! इस प्रकार मैंने श्रीभगवान् वासुदेव और महात्मा अर्जुन के इस अद्भुत रहस्य, रोमाञ्चकारक संवाद को सुना।

महाभारत के एक महत्त्वपूर्ण चरित्र सञ्जय का संक्षिप्त परिचय-

सञ्जय की भावना यह है कि अर्जुन की महानता कितनी अधिक है कि श्रीभगवान् ने अर्जुन के कारण गीता जी का प्राकट्य कर दिया और मैं धन्य हो गया।

श्रीभगवान् ने अर्जुन को अपना विश्व रूप भी दिखा दिया। जो न कभी देखा गया और न ही देखा जाएगा।

न वेदों से, न अध्ययन से और न ही ज्ञान से देखा जा सकता है। सञ्जय जन्म से शूद्र हैं, कर्म से क्षत्रिय हैं और ज्ञान से ब्राह्मण हैं।

गालवगण नामक सूत इनके पिता हैं। रूचि होने के कारण अल्पायु में ही इन्होने स्वयं से बहुत सारे शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था। ये नौ वर्ष की आयु में भगवान् वेदव्यास के पास पहुँचे और उनसे शिष्य रूप में ग्रहण कर शास्त्र पढ़ने की इच्छा प्रकट की।

वेदव्यास जी का शिष्य बनना कोई साधारण बात नहीं थी और ये तो सूत पुत्र थे, ब्राह्मण नहीं, परन्तु उन्होंने इनका शास्त्र ज्ञान और रूचि देखकर इन्हें अपने शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया।

इनके शिष्यत्व, ज्ञान, सेवा से प्रभावित होकर वेदव्यास जी ने इनको सारा ज्ञान तो दिया ही, साथ ही इन्हें सोलह वर्ष की आयु में ही ब्राह्मणत्व भी प्रदान कर दिया।

नीति शास्त्र का पूरा उपदेश करके वेदव्यास जी सञ्जय को धृतराष्ट्र के पास लेकर आये और उनसे कहा कि इसकी सात्त्विकता, सरलता, ज्ञान व विवेक उत्तम है, इसको अपना मन्त्री बनाओ। इसके साथ पितृवत व्यवहार करना और इसकी बात मानना। यह तुम्हारा सारथि भी बनेगा। धृतराष्ट्र ने उनकी आज्ञा का पालन किया। जीवन भर सञ्जय को अपने पास रखा। जब भी उन्हें अपने मन की कोई बात कहनी होती थी तो वह सञ्जय से ही कहते थे।

महाभारत युद्ध आरम्भ होने से पहले वेदव्यास जी धृतराष्ट्र के पास आये और उन्हें युद्ध देखने हेतु दिव्य दृष्टि देने की बात कही तो धृतराष्ट्र ने मना कर दिया। उन्होंने कहा कि जीवन भर अँधा रहने के पश्चात् अब मैं यह रक्तपात नहीं देखना चाहता।

आप मेरे मित्र सञ्जय को ये दिव्य दृष्टि दे दीजिये। तब **धृतराष्ट्र के कहने पर वेदव्यास जी ने सञ्जय को दिव्य दृष्टि दी। इसी के**

कारण सञ्जय ने गीता जी का श्रवण और वाचन किया।

श्रीभगवान् के विराट रूप का दर्शन भी किया। जब भीष्म पितामह शरशैया पर आ गए तब युद्ध के दसवें दिन वापस आकर धृतराष्ट्र को पूरी महाभारत सुनायी। महाभारत सुनाने के पश्चात सञ्जय संन्यास लेकर तपस्या में लीन हो गए।

18.75

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवान्, एतद् गुह्यमहं(म्) परम्।
योगं(म्) योगेश्वरात्कृष्णात्, साक्षात्कथयतः(स्) स्वयम्॥75॥

व्यासजी की कृपा से मैंने स्वयं इस परम गोपनीय योग (गीता-ग्रन्थ) को कहते हुए साक्षात् योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण से सुना है।

विवेचन- सञ्जय स्वयं को धन्य मानते हैं और अपने गुरु वेदव्यास जी का स्मरण करते हैं। उनकी कृपा से ही मैंने दिव्य दृष्टि पाकर इस परम गोपनीय योग को अर्जुन के प्रति कहते हुए योगेश्वर भगवान् कृष्ण से प्रत्यक्ष सुना ।

18.76

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य, संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः(फ्) पुण्यं(म्), हृष्यामि च मुहुर्मुहुः॥18.76॥

हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस पवित्र और अद्भुत संवाद को याद कर-करके (मैं) बार-बार हर्षित हो रहा हूँ।

विवेचन- हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस पवित्र और अद्भुत संवाद को स्मरण करके मैं बार-बार हर्षित हो रहा हूँ।

18.77

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य, रूपमत्यद्भुतं(म्) हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन्, हृष्यामि च पुनः(फ्) पुनः॥18.77॥

जहाँ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं (और) जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहाँ ही श्री, विजय, विभूति (और) अचल नीति है - (ऐसा) मेरा मत है।

विवेचन- हे राजन्! उस अत्यन्त विलक्षण रूप को पुनः-पुनः स्मरण करके मेरे चित्त में बारम्बार महान आश्चर्य हो रहा है और मैं हर्षित हो रहा हूँ कि मैंने क्या देख लिया।

श्रीभगवान् के उस रूप को मैंने देख लिया; जिसे ऋषि-मुनि और देवता भी नहीं देख सकते। मेरे गुरुदेव की कृपा से मैंने उस रूप का दर्शन कर लिया; जिसे श्रीभगवान् ने मात्र अर्जुन को दिखाया था।

जैसे **शबरी श्रीभगवान् का दर्शन करते ही अपने गुरु की कृपा का स्मरण करती हैं, वैसे ही इस समय सञ्जय भी अपने गुरु का स्मरण करते हैं।**

अच्छे व्यक्ति की पहचान ही यही है कि जिसके कारण उसने जीवन में कुछ भी प्राप्त किया, वह उसकी कृतज्ञता मानने में कभी चूक नहीं करता।

18.78

यत्र योगेश्वरः(ख्) कृष्णो, यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिः(र्), ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥18.78॥

विवेचन- हे राजन्! मैं विशेष क्या कहूँ? जहाँ पर साक्षात योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और गाण्डीव धारी अर्जुन हैं, वहीं पर श्री हैं, वहीं पर विजय है, वहीं पर विभूति है और वहीं पर नीति है, ऐसा मेरा अचल मत है, इसमें कोई शङ्का नहीं है।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः

यह गीता जी का पहला श्लोक है। इसका पहला अक्षर है ध एवं

तत्र श्रीर्विजयो भूतिः(र्), ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम

अन्तिम श्लोक में म पर समापन होता है।

ध से आरम्भ होकर म पर पूर्ण होकर गीता धर्ममय हो गयी।

अर्जुन गाय नहीं बने होते और श्रीभगवान् गोपाल नहीं बने होते तो हम लोगों को गीता रूपी दुग्ध अमृत न मिलता। अर्जुन और श्रीभगवान् के प्रति कृतज्ञ होकर हम सब लोग गीता जी का वाचन करें। श्रीभगवान् अत्यधिक कृपालु और दयालु हैं, जो समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए ऐसी गीता माता, हमें सहज ही में दे दीं।

गीता जी पढ़ें, पढ़ाएं, जीवन में अपनाएँ।

श्री हरि नाम कीर्तन के पश्चात सत्र समाप्ति हुई।

हरि शरणम्

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसन्न्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'मोक्षसन्यासयोग' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||